साधु
मासिक
लेखक
शिव बरत लाल वर्मन
ऐम. ए.
प्रकाशक

'शिव' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टि-कोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचार सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है। मनुष्य बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की बाणी को सरल,सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायगा।

४—किसी धर्म,पंथ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जा

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जांय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ साफ अ लिखना चाहिये। उत्तर के लिये जवाबी कार्ड आना चाहिये। वी पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायगी। इसका वार्षिक मूल्य ६-०० ८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुँचे तो पहले अपने डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर मिले वह अगला निकलने से एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुँचने पर ही प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैने के नाम से भेजने चाहिये। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफसा लिखना चाहिये। और पते की तबदीली भी।

देवीचरन मीतल

महिला चरितांजली

ले० महर्षि शिवव्रतलाल

सहायक सम्पादक—

देवीचरन मीतल

लेखराजनगर, अलीगढ़

प्रकाशक व सम्पादक

नन्दू भाई

शिव साहित्य प्रकाशन मन्डल

पो० दयालनगर, अलीगढ़

द्वितीय बार सितम्बर १९७३		मूल्य ०—७५

सर्वाधिकार सुरक्षित

परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज

से प्रार्थना कीगई है कि दशहरा के सत्संग के बाद दहली से अलीगढ़ पधारें। आशा है कि अलीगढ़ पधारेंगे।

देवीचरन मीतल

शिव का यह अंक

सितम्बर महीने का है। चूंकि मैं अस्वस्थ हूं इसलिये समय पर छपने में भी देर हुई और पृष्ठ संख्या भी कम करनी पड़ी जो अगले महीने में पूरी की जायगी और यह महिला 'चरिताञ्जली' पूरी की जायगी।

ग्राहकों से निवेदन

आज कल कागज की मँहगाई तो है ही और वह भी बाजार में मिलता नहीं। छपाई आदि का खर्च भी बढ़ गया है मगर 'शिव' उसी चन्दे में आपको भेजा जारहा है। अफसोस यह है कि 'शिव' के ग्राहक बार बार पत्र डालने पर भी चन्दा नहीं भेजते और बहुत सा चन्दा मारा जाता है। इससे 'शिव' को और भी हानि उठानी पड़ रही है। इसलिये निवेदन है कि प्रत्येक ग्राहक बन्धु को इसके ग्राहक बनाने तथा प्रचार में सहायता करना चाहिये और स्वयं चन्दा भेज देना चाहिये।

दशहरा सत्संग

पर आने वाले ग्राहक महोदय अपना चन्दा स्वयं दे दें।

R. S.

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः ।।

शिव

वर्ष १६	आषाढ श्रावण सं० २०३० वि० जुलाई भाद्र पद १६७३	तरंग ७

प्रार्थना

शब्द

१. दया दृष्टि से खोल दे आंख मेरी ।
रहे वासना मन में भक्ती की तेरी ।।१।।
२. तेरी आस है और तेरा है सहारा ।
शरन दे के कर सिन्ध से भव के पारा ।।२।।
३. गले में पड़ी काल माया की फांसी ।
दया से कटे मोह बन्धन की गांसी ।।३।।
४. करूं तन से और मन से मैं काम तेरा ।
रहे रात दिन होटों पर नाम तेरा ।।४।।
५. सदा सर्वदा मन में हो ध्यान तेरा ।
तेरा ही हो अनुमान और ज्ञान तेरा ।।५।।
६. जपूं राधास्वामी भजूं राधास्वामी ।
पढ़ूं राधास्वामी गुनूं राधास्वामी ।।६।।

॥ शिव ॥

मौज मालिक

दशहरा सत्संग सूचना

मन मथुरा दिल द्वारिका, काया काशी जान।
दसों द्वार का देहरा, ता में जोति पिछान॥

सब महापुरुष और धार्मिक ग्रंथ यह कहते या लिखते चले आरहे हैं कि दुनियां जिस खुदा, भगवान या ईश्वर की तलाश में है वह नूर (प्रकाश ज्योति) है. जो मनुष्य के अपने ही अन्दर मौजूद है और जिसे पाने पहिचानने की आवश्यकता है। इससे एक बड़ा लाभ यह है कि मनुष्य असली अर्थों में ज्ञानवान होकर दुनियावी दुखों से ऊपर आजाता है। कैसे इस मंजिल तक आसानी से पहुँचा जाय, इस बारे में परम सन्त दयाल फकीर साहब (होशियारपुर वाले) अपने ८६ वर्षीय अनुभव के आधार पर सत्संग देंगे। जरूरत-मंद सज्जनों को इस स्वर्ण अवसर से लाभ उठाने को सलाह दी जाती है।

सत्संग और ठहरने का स्थान

सालवान पब्लिक स्कूल पुराना राजेन्द्र नगर (पूसा रोड के पास)
नई दिल्ली—६०

सत्संग प्रोग्राम

५ अक्टूबर १९७३ शुक्रवार प्रातः ९ बजे से ११ बजे तक
" " " सायं ३ बजे से ५ बजे तक
६ " " शनिवार प्रातः ९ बजे से ११ बजे तक

नोट—(१) लंगर (भोजन) का प्रबन्ध पहिले की तरह दयाल मानवता प्रचारक सभा की ओर से होगा जो केवल ५ अक्टूबर (प्रातः सायं) और ६ अक्टूबर (प्रातः) के लिये है।

(२) बाहर से आने वाले प्रेमी भाई किसी भी समय ४ अक्टूबर ७३ को सालवान स्कूल में आकर ठहर सकते हैं। अपना बिस्तर साथ लावें।

खुश खबरी—दयाल मानवता प्रचारक सभा की ओर से एक धार्मिक आध्यात्मिक लायब्रेरी नया राजेन्द्र नगर में स्थापित है। इच्छुक तथा प्रेमीजन लाभ उठा सकते हैं।

लायब्रेरी का पता—दुकान नं० १०६ के पीछे शंकर रोड मार्केट, राजेन्द्र नगर-नई दिल्ली।

विनीत तथा दर्शनाभिलाषी

(१) नन्दलाल उर्फ आनन्द दयाल आनरेरी सेक्रेटरी, दयाल मानवता प्रचारक सभा दुकान नं० १०६ के पीछे शंकर रोड मार्केट नया राजेन्द्र नगर नई दिल्ली।

(२) देबीचरन मीतल, स्मारक 'मनुष्य बनो,' लेखराज नगर, अलीगढ़।

———

दशहरा सत्संग

परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज का सन्देश

होश आया। दुनिया देखी। मेरे जीवन ने अपने आदि घर की खोज की। इस क्रम में मौज हुजूर दाता दयाल महर्षि शिवव्रतलालजी महाराज के चरणों में लेगई। सनातन धर्म जिसमें मैं पैदा हुआ उसके संस्कारों से उस पवित्र विभूति को मालिक का अवतार समझ कर मैंने प्रेम किया और उसकी पूजा की। उन्होंने मुझे सन्त मत या गुरुमत की ओर अपने आदि घर या अपनी आदि अवस्था को प्राप्त करने के लिये ख्याल (संस्कार) दिया। बात मेरी समझ में नहीं आती थी और अपने आदि घर का पता नहीं लगता था। इसका पता देने के लिये दातादयालजी महाराज ने मुझे गुरुयायी का काम करने का आदेश दिया था और कहा था कि इस जीवन के खेल समाप्त होने से पहिले शिक्षा को बदल जाना। साहस नहीं था और विरोध का भय रहता था। मैं हुजूर बाबा सावनसिंह जी महाराज के दरबार में गया। उन्होंने मुझे उत्साहित किया और मुझे निर्भय होकर काम करने की आज्ञा दी। मैंने अपने जीवन के हर पहलू में जो अनुभव किया वह कहा। मेरा जीवन बदल कर हस्ती (अस्तित्व) की ओर आकर्षित है मगर अब हस्ती (अस्तित्व) से परे जो अवस्था है उस ओर जाने की कोशिश करता रहता हूँ।

अब शारीरिक व्यवस्था कमजोर हो रही है मगर फिर भी कुदरत ने मेरे जिम्मे जो कर्त्तव्य दातादयाल जी महाराज और बाबा सावनसिंह जी द्वारा लगाया है उसको पूरा करने की कोशिश करता रहता हूँ। इस दशहरा पर दहली पहुँचने की यथा शक्ति कोशिश करूँगा। मैं ३० सितम्बर १९७३ ई० को होशियारपुर से चलकर दो दिन सरसोहेड़ी ठहरने का इरादा रखता हूँ और फिर दहली पहुंच जाऊँगा। आगे मालिक की इच्छा।

मैं आशा करता हूँ कि कोई सज्जन मुझे दहली से बाहर ले जाने की कोशिश नहीं करेगा।

फकीर

भूमिका

सन् १९०१ ई० और सितम्बर का महीना था। उस समय मैं "आर्य्य गजट' लाहौर का सम्पादक था जिसके अधिष्ठाता सुप्रसिद्ध देश भक्त लाला लाजपतराय जी थे। एक दिन वह मेरे दफ्तर में आये और कहने लगे, "आपको हिन्दू शब्द बहुत प्यारा है। अपने लेख में आर्य शब्द क्यों नहीं लिखा करते ? आगे ऐसा न हो। 'हिन्दू' घृणित नाम है जो अन्य जाति वालों ने भारत निवासियों को दिया है।" लाला जी को मेरी इस बात पर कुछ क्रोध भी आगया था। मैंने उनसे कहा, 'मैं सब कुछ जानता हूँ और जान बूझ कर ऐसा लिखता हूँ और हिन्दू शब्द ही आगे भी मेरी लेखनी से निकला करेगा। आप चाहें किसी और के हाथ 'आर्य्य गजट' को सौंप दें।" वह यह सुन कर चकित हुये, "ऐसा लिखने से आपका प्रयोजन क्या है ?" मैंने उत्तर दिया, "आर्य्य नाम आर्य्य जाति का था। पहिले सारे मतावलम्बी और जाति पाँत वाले अपने आपको आर्य्य कहते थे। यहाँ तक कि जैनी और बौद्ध आदि भी अपने धर्म्म को जैन धर्म अथवा बुद्ध धर्म नहीं कहते थे किन्तु अपने धर्म को सदैव आर्य धर्म कहा करते थे। जब से आर्य समाज की मण्डली बनी आर्य समाजी हिन्दू नाम से चिढ़ने और घृणा करने लगे। उनके देखा देखी सिख (खालसा पन्थ वाले) भी हिन्दू कहलाने से कतराने लगे। ब्रह्मसमाजियों की भी यही दशा है। इससे हिन्दू जाति छिन्न भिन्न होगई और जाति मर्यादा को धक्का पहुंचा। अब आर्य समाज रह गया। मैं सबको, चाहे वह कोई क्यों न हो, एक हिन्दू जाति में गुथा हुआ देखना चाहता हूँ। सम्प्रदाय भेद चाहे रहे, इससे हानि नहीं पहुँचती परन्तु सब के लिये एक प्रचलित नाम रहे और वह उसके अभिमानी रहेंगे।" लालाजी सुनकर चुप रह गये। मैंने फिर कहा,

"आज आप मुझसे लड़ रहे हैं और हिन्दू की जगह आर्य लिखना चाहते हैं। दस वर्ष के पीछे आप आर्य की जगह हिन्दू कहते फिरेंगे।" वह फिर कुछ न बोले। बड़ी समझ बूझ के मनुष्य थे। मेरा अभिप्राय समझ गये। दूसरे वर्ष उनको इँगलैण्ड जाना पड़ा। लौटने पर वह भी मेरे सदृश अपनी जाति के लिये लेक्चरों में हिन्दू ही शब्द का प्रचार करने लगे। मेरी भविष्यवाणी दस वर्ष के लिये थी परन्तु वह तीन ही वर्ष के भीतर पूरी होगई।

मुझ में सम्प्रदायी या पन्थाई पक्षपात नहीं है। मैं सबको प्रेम की दृष्टि से अपने जैसा देखता हूँ। जहां मैंने हिन्दुओं के वीर पुरुषों और विदुषी महिलाओं के चरित्र लिखे साथ ही जैनी और बौद्धों को भी अपने से पृथक नहीं समझा। उनके भी चरित्र बहुतायत के साथ मेरी रची हुई पुस्तकों में मिलेंगे।

इस ग्रन्थ में कई विदुषी जैन महिलाओं के वृत्तान्त मिलेंगे जिन्होंने इस भारत के शोभा धाम बनाने में कम योग्यता नहीं प्रगट की थी। उनके इतिहास मनोरंजन और प्रभावशाली हैं और भक्ति प्रेम, उत्साह के भाव को उभारते हैं। आशा है जो लोग इन्हें पढ़ेंगे वह मुझमे सहमत हुये बिना न रहेंगे।

गुरु आशीर्वाद दें कि हम सब सम्प्रदाय भेद को भूल कर स्वजाति प्रेम की ओर ध्यान दें, मिल जुल कर परस्पर प्रीति का पालन करें और भारत की सेवा में भली भाँति संगठन के साथ भाग लें।

२० सितम्बर १०२४

शिव

R. S.

महिला चरिताञ्जली

ऋषि दत्ता

मध्य देश में रथमर्द्दन नाम एक नगर था। वहां का राजा हेमरथ था और उसका लड़का कनकरथ कहलाता था। रानी का नाम स्वयशस था। यह लड़का बड़ा ही शूरवीर, सुन्दर और सुशील था। मध्य देश इसके गुणों से वैसा ही सुशोभित था जैसे कमल का खिला हुआ फूल तालाब की शोभा को बढ़ाता है। उस देश के नवयुवक उसको अपना आदर्श समझते थे। मसल है "जैसा राजा वैसी प्रजा" परन्तु इस राजकुमार की दशा देख कर कहना चाहिये कि "जैसा राजा का लड़का वैसी ही प्रजा की सन्तान।" राजा के सद्भाव का प्रभाव प्रजा पर पड़ता है। राजा के लड़के जैसे भले या बुरे होंगे वैसी ही प्रजा की भी सन्तान होगी।

उस समय कावेरी नदी के किनारे सूरसुन्दर राजा राज करता था। उसका राज्य कावेरी कहलाता था। उसकी रानी का नाम बासूला था। उनकी लड़की रुक्मिणी बड़ी ही रूपवती थी। जब वह सयानी हुई मां बाप उत्तम वर की खोज करने लगे। उनको पता लगा कि हेमरथ का लड़का कनकरथ उसके लिये योग्य वर है।

सूर सुन्दर ने अपने पुरोहित को भेजा कि मध्यदेश के राजा से बात-चीत करके राजकुमार को बुला लाये जिसमें उसके साथ राज कुमारी का व्याह कर दिया जाये।

पुरोहित वहाँ गया। हेमरथ भी लड़के के लिये योग्य कन्या की खोज में था। राजकुमार बहुत से आदमियों के साथ बाप की आज्ञा पाकर कावेरी की ओर चल निकला।

अभी वह राह ही में थे कि एक मनुष्य उनको मिला। उसने कहा, "मेरा राजकुमार अरिदमन जंगल में शिकार खेलने आया है। वह तुम्हारे साथ लड़ना चाहता है।" ऐसा अनुमान किया जाता है कि अरिदमन को रुक्मिणी के साथ विवाह करने की इच्छा थी और वह कनकरथ को जो राह का कांटा बन रहा था दूर करना चाहता था। कनकरथ व्यर्थ मारधाड़ करना नहीं चाहता था। फिर भी वह क्षत्री था। कैसे सम्भव था कि कोई शत्रु उसको लड़ने के लिये ललकारे और वह उसका सामना न करे! क्षत्री का धर्म महा कठिन है। कभी कभी यह लड़ना भिड़ना नहीं चाहते परन्तु शत्रु से सामना करने में हिचकिचाना या लड़ाई के मैदान से भाग जाना भी तो अधर्म है। कोई सच्चा क्षत्री धर्म से पतित होना कदापि नहीं चाहता। अन्त में लड़ाई हुई। अरिदमन हार कर जंगल में भाग गया और यती का जीवन व्यतीत करने लगा। यह नहीं पता चलता कि उसकी तपस्या का फल क्या हुआ!

कनकरथ की सेना आगे बढ़ी। एक महा भयानक मैदान राह में आया जिसमें कहीं पानी नाम मात्र के लिये नहीं था। मनुष्य और पशु प्यास से तड़पने लगे। राजकुमार ने कई सवारों को पानी की खोज में इधर उधर भेजा और समझा दिया कि "जहाँ कहीं वृक्ष और हरियाली देखो समझलो कि पानी अवश्य होगा।" यह जाकर देर तक ऐसी जगह ढूँढ़ते रहे और कई घंटे के पीछे लौटे। राजकुमार ने पूछा, "तुम लोगों ने देर क्यों की?" उत्तर मिला,

"यहाँ से थोड़ी दूर पर एक झील है जिसके किनारे खजूर और केले के वृक्ष बहुतायत से लगे हुये हैं। वहाँ हमको एक बहुत ही सुन्दर लड़की दिखलाई दी और फिर दम के दम में लापता होगई। उसे देख कर हमें आश्चर्य हुआ। वह इस भयानक बन में वैसी ही दिखाई दी जैसे साँप के मुँह में मणि या काली घटाओं में बिजली। पता नहीं वह कौन है और कौन नहीं है! हमारा विचार था कि आप उसको देखकर प्रसन्न होंगे इसलिये उसकी खोज में देर हुई।"

राजकुमार यह सुन कर झील की ओर चल खड़ा हुआ। सेना भी लड़ाई के बाजे बजाती हुई चली। सब झील के किनारे पहुँच गये। संयोगवश या भाग्यवश वह लड़की फिर वहाँ दिखाई दी। राजकुमार उसको देख कर सन्नाटे में आगया और मन में कहने लगा कि "यह इन्द्र की अप्सरा है या नाग कन्या है! ऐसी रूपवती स्त्री मैंने आज तक नहीं देखी। कोयले की खान में यह हीरा कैसा! छिछले गढ़े के पानी में ऐसा चमकदार और बहु मूल्य मोती कहाँ से आगया!" वह इसी सोच विचार में था कि वह लड़की फिर आँखों से ओझल होगई। राजकुमार की आज्ञा पाकर लोग झील के किनारे और आस पास उसे ढूँढ़ने लगे।

थोड़ी ही दूर पर एक फूस का झोंपड़ा दिखलाई दिया। उनको विश्वास हो गया कि "हो न हो वह लड़की इसी में रहती होगी!" आगे बढ़े। झोंपड़े के निकट ऋषभदेव की मूर्त्ति खड़ी थी। सब ने समझ लिया कि यहाँ कोई जैनी यती रहता है। राजकुमार भी जैनी था। उसने मूर्त्ति की पूजा की और स्तुति गाकर कहा; "आज मेरा भाग्य उदय हुआ। यात्रा में तीर्थङ्कर का दर्शन पाना शुभ है।" जब वह उसकी पूजा कर रहा था वहां उसी समय एक जटा धारी यती आया। उसके साथ टोकरी में फूल लिये हुये वह लड़की भी थी। राजकुमार ने लड़की को और लड़की ने राजकुमार को देखा दोनों के हृदय में एक दूसरे का प्रेम उत्पन्न हुआ। राजकुमार की

तरह लड़की भी सोचने लगी "कहीं यह इन्द्रदेवता तो नहीं है जिसकी कथा सद् शास्त्रों में आई है और क्या वह यहाँ ईश्वर की पूजा के लिये आया हुआ है !"

जब वह यती ऋषि पूजा कर चुका आप ही आप राजकुमार से कहने लगा, "यहाँ कोई भी नहीं आता। तुमको तुम्हारा सौभाग्य यहाँ लाया है। मेरे झोंपड़े में आकर विश्राम करो। अपनी सेना को भी आज्ञा दो कि झील के किनारे किनारे खेमा डाल दे। मैं साधू हूं। मेरे साथ इस लड़की के अतिरिक्त और कोई नहीं है। मुझसे जहाँ तक हो सकेगा तुम्हारी सेवा करूँगा। साधू के घर में फल फूल, जड़ी बूटी और कन्द मूल के अतिरिक्त और क्या मिलेगा। कन्द मूल ही हमारा आहार है। हम इनको खाकर और झील का पानी पीकर यहाँ रहते हैं और ईश्वर की भक्ति करते हैं।"

राजकुमार ने हाथ बाँध कर उसको नमस्कार किया और झोंपड़े में आया।

ऋषि ने पूछा, "तुम कौन हो ? और कहाँ से आये हो ? क्यों आये हो ? तुम्हारे साथ इतनी भीड़ भाड़ क्यों है ? क्योंकि इस स्थान का पता इने गिने साधुओं को है जो यहाँ रह गये हैं। दूसरे इसको नहीं जानते।"

राजकुमार ने अपना वृत्तान्त ज्यों का त्यों उसको सुना दिया। ऋषि बोला, "मैं तुम्हारे बाप दादा को भली भाँति जानता हूं। तुम्हारे यहाँ आने से मैं बहुत ही प्रसन्न हूं।"

फिर राजकुमार ने पूछा, "मैंने अपनी कथा कह सुनाई। यदि कोई हर्ज न हो तो आप भी बताइये कि आप कौन हैं ? यह मन्दिर यहाँ किसने बनाया ? ऋषभदेव की यह बड़ी और उत्तम मूर्त्ति यहाँ कैसे आई ? यह लड़की कौन है ? और इस सुनसान जगह में इसका क्या काम है ? इसे तो किसी राज महल में रहना चाहिये था।"

ऋषि हँसा, "मेरी कथा बहुत बड़ी है। तुम विश्राम करलो, थकावट दूर हो जाये फिर मैं अपनी राम कहानी तुमको सुना दूँगा।"

साधू ने राजकुमार को भोजन करने के लिये कहा। लड़की ने कन्द मूल आग में भूने। उसके छिलके दूर किये और कमल के पत्तों पर जड़ी, फल, फूल, साग और भाजी सजाकर लेआई जिसमें नमक तक नहीं था। राजकुमार ने प्रेम के साथ भोजन किया। जब सब खा पी चुके ऋषि ने कहा, "यदि अब तुम्हारी इच्छा हो तो मैं अपनी कथा तुमको सुना दूँ।"

कनकरथ ने कहा, "आपकी बड़ी की कृपा होगी। मैं स्वयं आपसे प्रार्थना करने वाला था।"

ऋषि बोला—भारतवर्ष में अमरावती नाम का एक नगर है। वहाँ हरिसेन राजा अपनी रानी प्रियदर्शनी के साथ राज करता था उसके एक लड़का था जिसका नाम जिन सेन था। एक दिन कोई मनुष्य एक घोड़ा लाया जिसको उलटी शिक्षा दी गई थी—अर्थात् वह एड़ लगाने पर चुप चाप खड़ा हो जाता था और लगाम खींचने पर सरपट दौड़ता था। घोड़ा देखने में बहुत ही अच्छा था। राजा ने उसको पसन्द किया और सवार होगया। जब उसने उसके रोकने के लिये लगाम खींची घोड़ा उछल पड़ा और हवा से बातें करता हुआ एक जगह ले आया जहाँ कोई साधू रहता था। साधू ने उसे देख कर प्रसन्नता प्रकट की और बोला, "बेटे! मेरी मृत्यु निकट है। मुझको साँप के विष उतारने का मन्त्र आता है। मैं चाहता था कि मरने से पहिले किसी को बता जाऊँ जिसमें यह विद्या गुप्त न होने पाये। अब तुझको बताता हूं। देखना! जिसका इलाज करना। उससे इसके बदले में कुछ भी न लेना।" साधू ने राजा को वह मन्त्र सिखाया और घोड़े की उलटी शिक्षा का भेद भी बत-

लाया। मन्त्र सिखाने के पीछे उसने राजा को बिदा किया औ घोड़ा फिर उसकी राजधानी में पहुँचा गया।

राजा के आने पर उसकी प्रजा ने उत्सव मनाया और वह फिर पहिले की तरह राज काज का काम करने लगा।

एक दिन उसके पास एक सवार आया। उसने कहा, महाराज मंगलावती नगर में राजा प्रियदर्शन की रानी विद्युतप्रभा की लड़की प्रीतिमती को साँप ने डस लिया है। आप चल कर उसका इलाज कीजिये। राजा ने प्रार्थना स्वीकार करली। वह साँडनी की सवारी पर वहाँ आया। उसके इलाज से राजकुमारी अच्छी होगई। प्रियदर्शन ने कहा, "तुम ने इस लड़की की जान बचाई है इसलिये मैं तुम्हें इसी को भेंट देता हूं!" हरिसेन ने उत्तर दिया, "इस वदले में मैं कुछ भी नहीं ले सकता। यह गुरू की आज्ञा है।" दर्शन हँसा, 'फीस रुपये वा जवाहरात के रूप में दी जाती यह लड़की उसके वदले में नहीं दी जाती किन्तु यह तुम्हारे यो है।" हरिसेन ने विवाह कर लिया और प्रीतिमती के साथ राज महल में लौट आया। कुछ दिनों राज करता रहा। उसका लड़का सयाना था। राजा ने उसी को राज सौंप दिया और आप विश्वभूति यती से दीक्षा पाकर तप करने लगा। राजा और रानी दोनों ही तप करते थे परन्तु पाँच महीने पीछे पता लगा कि रानी गर्भवती है। यती यह दशा देख कर बहुत बिगड़ा। राजा ने रानी से पूछा, "यह क्या बात है?" रानी बोली, "गर्भ पहिले ही से था। तुमको इसलिये नहीं बताया कि तुम मुझको अपने साथ वन में न लाओगे और मैं तप के फल को प्राप्त न कर सकूँगी।" तपस्वी तो जङ्गल छोड़ कर चले गये। राजा और रानी दोनों दुखी थे परन्तु करते क्या! वहाँ अकेले रहने लगे। नौ महीने पीछे रानी ही के रूपकी एक लड़की उत्पन्न हुई। ऋषि के झोंपड़े में जन्म होने के कारण उसका नाम ऋषिदत्ता रक्खा गया। रानी बड़ी ही सुकुमारी थी।

प्रसव का दुख न सह सकी । मर गई उसके श्राद्ध के पीछे राजा ही को लड़की का पालन पोषण करना पड़ा। जब वह आठ वर्ष की हुई बाप ने देखा लड़की बड़ी सुन्दर है ऐसा न हो कि कोई उसको आकर उठाले जाये। इस विचार से वह लड़कों क भेष में रहने लगी। बाप ही ने शास्त्र पुराण इतिहास और गाथायें पढ़ाकर उसको सुशिक्षित बनाया। ऐ राजकुमार ! मैं वही हरिसेन हूं और यह लड़की ऋषिदत्ता है।

राजकुमार यह सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुआ और ऋषिदत्ता को प्रेम की दृष्टि से देखने लगा। इसने भी इसे देखा। दोनों एक दूसरे मोहित होगये। दोनों एक दूसरे को टकटकी बाँधकर देखते मानो मन ही मन कह रहे थे:—

"नैनों अन्दर आव तू, नैन झाँप तोहि लूँ।
ना मैं देखूँ और को,, ना तोहि देखन दूँ।"

उनकी क्या दशा थी इसे केवल वही समझ सकते हैं जिनको कभी ऐसा अवसर मिला है या जो प्रेम के तत्व को समझते हैं।

"नैनों की कर कोठरी, पुतली पलँग बिछाय।
पलकों की चिक डालकर, प्रेमीहि लिया रिझाय।"

ऋषि उनके मन के भाव को भाँप कर कहने लगा, "राजकुमार! यह लड़की मैं तुझको देता हूं। इसको लेजा और प्रेम से रख।" राजकुमार ने कहा, 'मैं आपकी इस अमूल्य भेंट को सहर्ष स्वीकार करता हूं।" तब ऋषि बोला, "अच्छा ! अब तुम अपने खेमे में इसको लेकर चले जाओ। यहाँ गृहस्थियों को रहने की आज्ञा नहीं है।" राजकुमार ने हाथ बाँध कर कहा, "आप भी मेरे खेमे में चलिये। वहाँ हम सब लोग आपका प्रसाद पायेंगे। ऋषि ने उत्तर दिया, "तुम राजा हो। राजा की आज्ञा ऋषि मुनि, साधु महात्मा सभी मानते हैं परन्तु खेमे में जाना और जाकर रहना मेरे धर्म के विरुद्ध है। जो काम मैंने अब तक नहीं किया वह क्यों करूँ ?"

राजकुमार ऋषिदत्ता को लेकर खेमे में चला आया। कई दिन तक वह वहाँ रहा। चलते समय वह विदा होने के लिये ऋषि के पास गया। उसने कहा, "मैं तुम्हें दो चार बातें बतलाता हूं। उनको यदि याद रक्खोगे तो दुख से बचें रहोगे। पहिली बात यह है कि धर्म और न्याय के साथ राज करना। राजा का न्याय किसी तपस्वी की तपस्या से कम नहीं होता। दूसरी बात यह है कि ऋषिदत्ता का पालन पोषण जंगल में हुआ है। यह महलों के रहन सहन को नहीं जानती। एक दम सीधी सादी है। इसका हृदय बड़ा ही कोमल है। तुम कभी कोई ऐसी बात न कहना और न करना जिससे उसको दुख पहुँचे नहीं तो यह शीघ्र ही मर जाबेगी। इसमें सादगी के साथ बहुत से गुण हैं जो बड़े घर की स्त्रियों में भी नहीं होते। इसमें सांसारिक सभ्यता की कमी अवश्य है परन्तु तुम जानते हो कि जंगल की गर्द कस्तूरिया हिरन की नाभो में जमकर कस्तूरी बन जाती है। ठीक इसी प्रकार यह इस जंगल की गर्द तुम्हारी संगत से कस्तूरी हो जायेगी। तुम जाओ, सुखी रहो। मेरा अन्त समय निकट आगया है। अब मैं इस शरीर को अग्नि के अर्पण करूँगा।" राजकुमार उसके पांव पर गिरा, "आत्म हत्या का शब्द मुख से न निकालिये।" ऋषिदत्ता बोली, "मुझ पर दया कीजिये।" ऋषि ने उत्तर दिया, "लड़की तू क्या चाहती है? जा अपने पति के साथ प्रेम से रह। यदि इसकी और भी रानियाँ हों तो उनसे सौतिया डाह न करना। सब के साथ प्रेम करना। हँसते हुये गुलाब की तरह रहना। जो तुम्हारे सामने आये वह भी प्रफुल्लित हो जाये। घृणा, ईर्षा और राग द्वेष जीवन के विष हैं। प्रेम और प्यार अमृत हैं। दुख हो या सुख, अधर्म का ध्यान भी मन में न आने पाये। यह शरीर नाशमान है। आज है कल नहीं होगा। कल था आज न रहेगा। इसका रखना व्यर्थ और निरर्थक है। मेरा अन्त समय आगया है। मुझको इसका ज्ञान हैं। फिर मैं जान

बूझकर क्यों व अभी से इस शरीर को आग में भेट कर दूँ ! यह आत्म हत्या नहीं है। यह चेत के साथ शरीर का त्याग करना कहलाता है।"

यह कह कर ऋषि ने चिता बनाई, आग लगाकर उस पर बैठ गया और जिनेश्वरों की महिमा की स्तुति गाता हुआ जल कर भस्म होगया।

ऋषि दत्ता रोने और विलाप करने लगी, "आह ! पिता जी ! तुम मुझको बहुत प्यार करते थे। मैंने माँ का मुख तक न देखा। तुम ही मेरे माँ बाप दोनों थे। जब केले की जड़ कट जाती है वह गिर पड़ता है। आज तुम्हारी मृत्यु से मेरी जड़ कट गई। मैं दुख के अथाह सागर में डूब रही हूं।"

कनकरथ ने प्रेम के साथ उसके आँसू पोंछे और ढारस देकर कहा, "प्यारी ! तुम किसके लिये विलाप कर रही हो ? तुम्हारे बाप ने लोक और परलोक दोनों ही बना लिये। देखो ! उन्होंने राज भी किया और अन्त में सच्चे ऋषियों की तरह हँसते हुये शरीर त्याग दिया। शोक तो उनके लिये करना चाहिये जिन्होंने अपने लोक और परलोक बिगाड़े हों।"

तब राजकुमार ने ऋषि का क्रिया कर्म किया और जहाँ उनकी राख गाड़ी गई थी वहाँ एक बहुत बड़ा स्तम्भ बनवा दिया। रानी के साथ वह रथमर्दन नगर को लौट आया। अपने माँ बाप के पाँव पड़ा और उनका आशीर्वाद लेकर सुख से रहने लगा। रुक्मिणी से विवाह करने का विचार उसके हृदय से जाता रहा।

जब काबेरी के राजा रानी ने यह बातें सुनीं वह मन में दुखी हुये परन्तु करते क्या ! चुप हो रहे। हाँ रुक्मिणी महा दुखी हुई। वह कनकरथ के साथ व्याह करना चाहती थी। काम और क्रोध के वश में आया हुआ मनुष्य क्या नहीं करता ! उसको धर्म अधर्म का विचार नहीं रहा। कई दिनों तक सोचने पर यह बात समझ में

आई कि "जब तक राजकुमार का मन ऋषिदत्ता की ओर से न फिर जाये तब तक काम निकलने की कोई आशा नहीं है।" फिर उसने सुलसा नाम की एक महामूर्ख और कुटिला स्त्री को बुलाया और समझा बुझाकर रथ मर्दन नगर की ओर भेजा।

यह किसी प्रकार राज महल में नौकरी पागई। रात के समय ऋषिदत्ता और उसकी सारी सहेलियों को कोई नशीली वस्तु पान में खिला दी। जब सब अचेत होकर सोरहीं उसने किसी के लड़के को मार डाला। उसका लहू एक प्याले में भर कर ऋषिदत्ता के सिरहाने रख दिया। साथ ही उसी जगह कटा हुआ सर भी लेजाकर रक्खा और बेचारी के मुँह में भी रक्त लगा दिया। जब प्रातःकाल राजकुमार ने देखा उसके मनमें घृणा उत्पन्न हुई। वह समय और तरह का था। लोग डाइन और वैताल पर विश्वास करते थे। उसने यह सोच कर कि कहीं यह ऋषि पुत्री डाइन तो नहीं हैं पूछा, "यह क्या बात है?" बेचारी ने हाथ बांध कर कहा "मैं जैनी हुँ। जैनी की लड़की हूं। तुमने मुझको जंगल में देखा है। मेरे बाप ने तुमको मेरा सब हाल सुना दिया है। मैं नहीं जानती यह किसका काम है और किस अभिप्राय से किया गया है! मैं तो एक चिउँटी तक को नहीं सताती! मनुष्य का मारना तो दूर रहा।"

कनकरथ को तसल्ली होगई और उसके प्रेम को कुछ भी धक्का नहीं पहुँचा। सुलसा यह हाल देख और सुनकर घबराई। फिर कई दिन तक बराबर ऐसा ही होता रहा। महल के लोग बहुत घबराये। नगर के कई मनुष्य राजा के यहां आकर दुहाई देने लगे कि उनके कई छोटे छोटे बच्चें मार डाले गये हैं। राजा बहुत ही चकित हुआ। सुलसा ने अवसर पाकर राजा से कहा, "यह रानी बच्चों का मांस खाती और उनका रक्त पीती हैं। इसी से आपकी भी बदनामी हो रही है।"

आजकल ऐसी बातों पर विश्वास नहीं किया जाता परन्तु एक समय था जब इस पवित्र भूमि में ऐसे लोग भी थे। दूर क्यों जाते हो अब भी कभी कभी मूर्ख स्त्रियां पुत्र और सन्तान के लिये क्या क्या नहीं करतीं हैं ?

राजा के कान खड़े हुये। सुलसा ने देखा कि उसका जादू चल गया। रात को उसने फिर वही दुष्कर्म किया। दिन निकलते ही राजा को बुला लाई। वह पहिले ही से पुलिस और अपने कर्मचारियों पर झुंझला रहा था। पता पाते ही वह स्वयं महल में चला आया। कनकरथ समझ गया कि आज कुशल नहीं है। राजा आते ही राजकुमार को बुरी तरह से डांटने लगा, "तू जानता हैं कि तेरी स्त्री राक्षसी हैं और फिर भी उसके साथ रहता हैं।" उसने कहा, "पिता जी ! संसार में ईर्षा और द्वेष से मनुष्य क्या नहीं करता ! जब तक यथार्थ बात का पता न लगे किसी को बदनाम करना उचित नहीं है।" राजा ने एक नहीं सुनी। उसने ऋषिदत्ता के सर के बाल पकड़ लिये, "राक्षसी ! तू ने मेरे कुल को कलंकित कर दिया। जा दूर हो।" बेचारी को घर से बाहर निकाल कर जल्लादों को हुक्म दिया "इसका सर उतार लो ऐसा न हो कि और बच्चे भी इसके हाथ से मारे जायें।"

ऋषिदत्ता रोती थी। कनकरथ ने समझाया, "प्यारी ! रोना व्यर्थ है। मैं अब तक भी तुमको निर्दोष समझता हूं परन्तु बेबस हूं। बाप के विरुद्ध मैं कुछ नहीं कर सकता। क्या करूँ ! कुछ कहते नहीं बनता।"

हुक्म पाते ही जल्लाद बेचारी को पकड़ ले गये। पहिले नगर की गलियों में घुमाया और फिर उस रोती हुई लड़की को जंगल में लाये। यहां वह मूर्छित होगई। सन्ध्या का समय था। जल्लादों ने सोचा—"यह आप मर गई हैं। मरे हुये को क्या मरें। उसकी लाश यहां ही पड़ी रहने दो। गीदड़ और भेड़िये खा जायेंगे।"

वह तो यह सोच समझ कर चले गये और राजा को उसके मार डालने की सूचना दी।

कनकरथ की दशा बुरी थी। उसने आत्मघात करना चाहा परन्तु राजा के हुक्म से उसके हाथ पाँव बांध दिये गये। वह कई दिन कारागार में रहा। ऋषि दत्ता की मोहनी मूर्त्ति उसकी आँखों में समा गई थी। वह दिन रात खाट पर पड़ा रहता और डंडी आहें भरता था।

जब ठंडी हवा बहने लगी, ऋषिदत्ता ने आंखें खोलीं। अपनी दशा देखी। जल्लादों ने नील से उसका मुँह काला कर दिया था। उसके सर पर झाड़ू बाँध दी थी और सारे शरीर पर नीम के पत्ते लपेट दिये थे। उसने इन सबको दूर किया और जान के डर से भाग निकली। वह रोती हुई कई दिनों पीछे भूखी प्यासी उसी जगह पहुँची जहाँ उसका बाप जल कर मरा था। वह स्तम्भ (खंभे) से लिपट कर रोने लगी, "पिताजी! आओ, देखो तुम्हारी लाड़ली बेटी की क्या दुर्गति है! तुमने कभी अपने जीवन में मुझको एक भी बुरी बात नहीं कही थी परन्तु मैंने राज महल में जाकर न केवल गालियाँ सुनीं किन्तु मेरा हर तरह से अपमान किया गया। मैंने ऐसा क्या पाप किया था जिसका दण्ड इस प्रकार मिला! मैं बराबर धर्म का पालन करती रही। कभी भूल कर भी किसी मनुष्य का हृदय नहीं दुखाया। मैं कैसे समझूँ कि मैं डाइन हूं और मैंने बच्चों का लहू पिया होगा! परन्तु संसार ऐसा ही कह रहा है। आह! मैंने राज महल में जाना क्यों स्वीकार किया! मैं निर्दोष हूं। तुम कहाँ हो? आओ और मेरी दशा अपनी आँखों से देखो।"

"माँ मेरे जन्म लेते ही मर गई। मैंने नहीं जाना कि माँ का सुख कैसा होता है! परन्तु बाप ने माँ की जगह ले ली। लाड़ और प्यार के साथ पाला! इस प्यारी झील का पानी राज महल के शरबत से कहीं मीठा और स्वादिष्ट था! इस जंगल के कन्द मूल

महल के मीठे पकवान से कहीं अच्छे थे ! यह फूँस का झोंपड़ा राज-महल से लाख गुना उत्तम था। बाप के प्यार करने वाले हाथ जब सर पर रक्खें जाते थे पति की गोद से कहीं शान्तिप्रद और सुख-दायी थे। ऐ मेरे भाग्य ! तू ने यह क्या खेल खिलाया ! माँ के साथ मुझको भी क्यों न मार दिया। यह दुर्दिन दिखलाने के लिये क्यों जीता रक्खा ? पिताजी ! तुम्हारी लड़की अकेली जंगल में बिलाप कर रही है। क्या तुमको दया नहीं आती ? ऐ मेरे बाप की आत्मा ! यदि मैं तेरी अंश हूं तो क्यों तुझको मुझ पर दया नहीं आती ? मैंने क्या बुरा काम किया है जो दुख के अथाह सागर में इस प्रकार डूब रही हूं !"

"मैं युवती हूं ! अवला हूं ! अभी मुझे संसार का अनुभव नहीं है सुनसान जंगल में कैसे अकेली रहूंगी ? यह सच है यहां कोई नहीं आता। परन्तु यदि कोई आगया तो मेरी क्या दशा होगी ? किस प्रकार किसी दुष्ट और पापी से अपने आपको बचा सकूँगी ! किसका दोष किसके सर मँढा जाय ! विधाता तेरी लीला विचित्र है ! मनुष्य की बुद्धि उसे नहीं समझ सकती !"

"आह पिताजी ! तुमने चलते समय राजकुमार से कहा था ऋषिदत्ता का हृदय महा कोमल है। एक कठोर बचन या थोड़े ही अपमान करने से मर जायेगी।" क्या तुमने झूँठ कहा था ? ऋषि-दत्ता का हृदय इन्द्र के बज्र के समान क्यों होगया ? वह अब तक क्यों नहीं मरी ? परन्तु नहीं, तुम झूठे नहीं हो राजकुमार ने तुम्हारी ऋषिदत्ता का अपमान या निरादर नहीं किया। न उसने कोई कठोर बचन कहे। वह अब भी उसे सच्चे हृदय से प्यार करता है। और यही कारण है कि अब तक वह जीवित है। प्रेम में बहुत बड़ी शक्ति है ! वह मैं भली भाँति जानती हूं।"

"प्यारे पिताजी ! आओ, अपनी भोली भाली और दुखिया लड़की को ढारस दो ! मैं कहाँ आऊँ ? क्या करूँ ?"

इस प्रकार रोती हुई ऋषिदत्ता देर तक उस पत्थर के खम्भ से लिपटी रही। घंटों रोने से सुस्ती आगई। चित्त कुछ कुछ शान्त होने लगा। सोचा समझा, विचारा और झील में नहाकर काले रंग को धो डाला। ऋषभदेव की मूर्त्ति के पास जाकर सर झुकाया। "जिनेश्वर ! आदि तीर्थङ्कर ! इस अवला पर दया करो। बाप का आत्मा ने ढारस नहीं दी। माँ बाप जन्म के साथी हैं। कर्म के साथी नहीं हैं। तुम दया के समुद्र हो ! जीवों को भव सागर के पार लगाने आये थे। मेरे इस दुख में काम आओ। तुम मुझको न भूलो और मैं भी तुमको न भूलूँगी।"

कान में शब्द आया "धैर्य्य धर, मर्दाने कपड़े पहिन ले। जिस जड़ी के रंग से तेरा बाप पहिले तुझको अजनवी पुरुषों के भय से रँगा करता था उसी से तू अपने शरीर को नित्य रँग लिया कर। तू ऋषि पुत्री है। कन्दमूल जंगल में बहुतायत में है। झील का पानी कम न होगा। तपस्या कर तू ही दुखिया नहीं है। दुख बुरे भले सब पर आता रहता है। महावीरस्वामी जैसे तपस्वी तीर्थङ्कर के कानों में दुष्टों और मूर्खों ने खूँटे ठोंके थे। तू उसी महावीर की आत्मिक पुत्री है। वही तेरा सच्चा बाप है। उसका ध्यान बराबर तेरे साथ रह कर तेरी सँभाल करता रहेगा। झोंपड़े के एक कोने में अब तक तेरे बाप की धर्म्म पुस्तकें पड़ी हुई हैं। उनका नित्य पाठ किया कर। पूजा वन्दना और तप का ध्यान रहे। समय आयेगा जब तेरे भाग्य उदय होंगे। सब तुझको निर्दोष कहकर प्यार करेंगे। रोना चिल्लाना बन्द कर। इससे कोई लाभ नहीं है। ऋषि पुत्री को ऋषि के समान रहना चाहिये।" आँसू की धार बन्द होगई। उसने सोचा "क्या यह शब्द मेरे ही हृदय से निकले हैं ! क्या आश्चर्य जिनेश्वरों की प्रेरणा से ऐसा हो।" दुख की मारी हुई ऋषिदत्ता ने अपने आपको वैसा ही बना लिया।

रुक्मिणी को अब आशा की झलकती हुई मूर्ति दिखलाई देने लगी। राजा रानी की जान में जान आई। पुरोहित फिर पहुंचा। हेमरथ ने बेटे को बुला भेजा, "पुत्र ! तू कब तक मरी हुई डाइन के लिये दुखी रहेगा ? जो होने को था होगया ! होने वाली बात होकर रहती है। क्षत्री का धर्म कठिन है। औरों को अपना ही दुख होता है। क्षत्री दूसरों के दुख से दुखी रहता है। तेरा धर्म है कि प्रजा का पालन करे। तू फूल था। अब सूख कर काँटा होगया है। तुझसे राज महल की शोभा थी। तेरे मुख की कान्ति और चमक दमक जाती रही। यदि फूल है तो खिलकर अपनी सुगन्ध को चारों ओर फैला और यदि दीपक है तो चमक कर सब को प्रकाश दे। तू मेरी आँखों का तारा है। देख तेरे दुखी रहने से मेरी और तेरी माता की क्या दशा होगई ! अपने लड़के को कोई भी दुखी नहीं देखना चाहता। दशरथ ने पुत्र के शोक में प्राण त्याग किये। क्या तू मुझको दूसरा दशरथ बनाना चाहता है ? छी ! छी !! बेटे ! यह तू क्या कर रहा है ! अपने धर्म को देख। जा काबेरी का पुरोहित तुझको बुलाने आया है। रुक्मिणी के साथ व्याह करके सुखी रह। मेरे पीछे राजगद्दी पर बैठ कर न्याय के साथ प्रजा का पालन कर। यह मेरा हुक्म है। यही मेरी इच्छा है। माँ बाप की आज्ञा न मानना अधर्म है। माँ बाप को प्रसन्न रख और तू भी संसार में सुखी रहेगा।"

राजकुमार ने बाप की आज्ञा मानली और फिर सेना लेकर काबेरी की ओर चल निकला।

राजकुमार कई दिनों के पीछे उसी जंगल में आया जहाँ ऋषिदत्ता उसे पहिले पहिल मिली थी। उसने झील को देखा। झील के किनारे खजूर और केले के वृक्षों को देखा—"हाय ! यह वही जगह है जहाँ प्यारी ऋषिदत्ता का दर्शन मिला था ! वही झोंपड़ा ! वही मन्दिर ! वही मूर्ति ! जिसे देखकर पहिले चित्त प्रसन्न हुआ था

आज वही महा दुखदायी प्रतीत हो रहा है। अमृत विष होगया ऋषिपुत्री को संसार ने डाइन बनाकर छोड़ा। अब मेरे जीवन का सहारा न रहा। वह चली गई और मैं अब तक इस असार संसार में दुख भोगने के लिये जी रहा हूं। कौन जाने ऋषिदत्ता कैसी थी परन्तु मैं तो निर्दोष हूं। मुझ पर क्यों दुख का पहाड़ आकर गिर पड़ा !"

वह इसी प्रकार विलाप करता हुआ मन्दिर की ओर बढ़ा। दाहिनी आँख फड़कने लगी, "हाय ! यह क्या शकुन है। क्या फिर किसी देवी का दर्शन मिलेगा ! विधाता ने एक से मिला कर अलग कर दिया। अब क्या होने वाला है ?"

जब वह मन्दिर के अन्दर गया एक पन्द्रह सोलह वर्ष का ब और रूपवान साधू टोकरी में फूल लिये हुए आया। उसका बहुत ही काला था परन्तु देखने में बड़ा ही सुन्दर और तेजस्व प्रतीत होता था। वह ऋषिदत्ता थी। उसने सोचा, "कनकरथ रुक्मिणी के साथ व्याह करने जा रहा है। इसके अतिरिक्त और कोई कारण उसके यहाँ आने का नहीं हो सकता।" उसने फूल सामने रक्खे। राजकुमार ने ले लिये और पूजा करने के पीछे उस साधू को आदर सत्कार के साथ बिठाया और कई अच्छे अच्छे कपड़े भेंट किये। ऋषिदत्ता को कपड़ों की आवश्यकता भी थी इसलिये उसने ले लिये।

राजकुमार ने पूछा, "आप कब से यहाँ आये ? कैसे आये ? कब तक रहेंगे ? और कब यहाँ से जायेंगे ?" ऋषिदत्ता मुसकराई, "यहाँ आये हुये मुझको कई वर्ष होगये। घूमते फिरते यहाँ आगया। कब तक रहूंगा या कब यहाँ से चला जाऊँगा इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं दे सकता क्योंकि रहना और जाना अन्न जल के आधीन है। पहिले यहाँ एक ऋषि हरिसेन रहते थे। उनकी लड़की ऋषिदत्ता बड़ी ही सुन्दरी और धर्मात्मा थी। कोई राजपूत आकर उसको लेगया। ऋषि भी मर गया। मुझको यह जगह पसन्द आई। इस-

लिये यहाँ आकर डेरा जमाया। आज आपके देखने से मेरे तप का फल मुझको मिल गया।"

राजकुमार—"यह बात मेरी समझ में नहीं आती। आपकी बातों से मुझको सुख और आनन्द मिलता है और मेरी आँखें आपकी ओर से नहीं हटना चाहतीं।"

ऋषिदत्ता—"इसमें आश्चर्य की क्या बात है? प्रेम की धार दोनों ही ओर से निकलती है। शहरों की गलियों में घूमते फिरते हुये हम को बहुधा ऐसी सूरतें देखने में आती है जिन से प्रेम हो जाता है और दूसरों से घृणा हो जाती है। कमल सूर्य को देख कर खिल जाता है। कुमुदनी को चाँद के दर्शन से सुख मिलता है परन्तु सूर्य के दर्शन से कुम्हला जाती है। इस संसार में हर जगह यही दशा है।"

राजकुमार—"दिल चाहता है कि आप मेरे मित्र हों।"

ऋषिदत्ता—"फकीरों से कोई कब करता है प्रीति।
मसल है कि योगी हुये किस के मीत॥"

राजकुमार—"परन्तु अपना दिल आपको कैसे खोल कर दिखाऊँ आप मेरी बातों का विश्वास नहीं करते।"

ऋषिदत्ता—"मुझे आप पर विश्वास हैं। दिल को दिल से राह है। दिल दिल की बात को भली भाँति समझता, जानता, और पहिचानता है। इसके लिये किसी गवाह की आवश्यकता नहीं है।"

राजकुमार—"तब मेरे साथ कावेरी को चलिये। बिना आपके मेरा एक पग भी आगे की ओर न पड़ेगा। लौटने पर मैं आपको यहां पहुँचाकर तब अपने देश को जाऊँगा।"

ऋषिदत्ता—"राजा और साधू का मेल कैसा?"

राजकुमार—"साधू दयालु और कृपालु होते हैं। वह दूसरों की प्रार्थना को अस्वीकार नहीं करते। महाराज! मैं आपकी सेवा तन मन और धन से करूँगा। "प्राण तक आप पर न्यौछावर है।"

ऋषिदत्ता—"यह आप कहते क्या हैं ? कहना सहल और करना कठिन है। किसका प्राण किस पर न्योछावर हुआ हैं ! यह सब कहने की बातें हैं। यही तो मुख्य कारण हैं कि साधू संसार को छोड़कर सब से अलग थलग रहते हैं।"

राजकुमार के साथियों ने भी साधू से चलने की प्रार्थना की। साधू भी यही चाहता था कि राजकुमार साथ रहे। साधू ने राजकुमार की बात मानली। दोनों रात के समय एक ही कमरे में सोये। कई दिनों पीछे कावेरी नगर में पहुँचे। साधू और राजकुमार बराबर साथ साथ रहा करते थे। केवल सन्ध्या के समय दोनों अलग हो जाया करते थे। उस समय साधू अपना रंग बदल लिया करता था।

राजा सूरसुन्दर ने आदर के साथ राजकुमार को महल में लेजाकर उतारा। धूम धाम के साथ उत्सव मनाया गया। नाच रंग के जलसे होते रहे। शुभ मुहूर्त्त में रुक्मिणी के साथ व्याह भी होगया। वह दोनों साथ साथ रहने लगे परन्तु कनकरथ को साधू के प्रेम का इतना ध्यान रहता था कि वह उसके कमरे के निकट ही सोता था।

एक दिन रुक्मिणी ने पूछा "महाराज ! वह अभागिनी ऋषिदत्ता कैसी थी जिसने आपके मन को चुरा लिया था ?"

राजकुमार बोला, "सूर्य को उसके सदृश कैसे कहूं ! वह गर्म हैं। चाँद से कैसे उपमा दूँ। वह काला और कलंकित हैं। इन्द्र की परियाँ उसके सामने तुच्छ हैं। मेनका उसको देख कर दासी बनने की इच्छा करती। जैसे मस्त मोर अपने पैरों को देखकर महा मलीन हो जाता है वैसे ही उर्वशी भी अपने रूप को भूल कर लज्जित हो जाती। कमल कीचड़ से उत्पन्न होता है। ऋषिदत्ता ऋषि पुत्री थी वह साक्षात सौन्दर्य की देवी थी। ब्रह्मा ने आज तक ऐसा सुन्दर सलोना रूप नहीं बनाया था। तुमने देखा नहीं। इसलिये तुम समझ नहीं सकती हो !"

रुक्मिणी—"मेरे ही मुँह पर मेरी सौत की इतनी बड़ाई ?"

राजकुमार—"फिर तुमने पूछा क्यों ?"

रुक्मिणी—"इसलिए कि मैं तुमसे सुनूं कि वह डाइन थी !"

राजकुमार—"मैं कुछ नहीं कह सकता।"

रुक्मिणी—"तो क्या अब भी आपको उसका प्रेम है ?"

राजकुमार—"क्यों न हो ! यह दिल मरते मरते भी उस पवित्र देवी के सच्चे प्रेम को भुला न सकेगा।"

रुक्मिणी के शरीर में आग लग गई। वह ही बोल उठी, "हाय ! सुलसा का कोई उपाय काम नहीं आया ! मेरी सौत आज तक राजकुमार के हृदय में बसती है ! मुझको कैसे चैन आये ! मैं उसे जीवित पाकर कैसे सुखी रह सकती हूं ! मैंने सब कुछ कर डाला परन्तु, वह अब तक तुम्हारे पास है !"

राजकुमार—"तुमने क्या क्या किया ?"

रुक्मिणी क्रोध की अग्नि में जल रही थी अपने आपको सँभाल न सकी। ऐसा जान पड़ता था मानो सरस्वती देवी उसकी जिह्वा पर बैठ कर ऋषिदत्ता को निर्दोष सिद्ध कराने आई थी। वह बोली, मैंने ही तो सुलसा की सहायता से उसे डाइन प्रसिद्ध कराया। उसी ने उसके मुँह से लहू लगाया। कई लड़कों की जान ली। मैंने तुम्हारे लिये कितने पाप किये फिर भी तुम मेरे नहीं हुए और मरने पर भी ऋषिदत्ता की याद को नहीं भूलते !"

राजकुमार—"अरी दुष्टा और पापिनी रुक्सिणी ! तू ने अपने साथ मुझको भी नर्क में ढकेल दिया ! काम के वशीभूत होकर तू ने एक अद्वितीय देवी की जान ली !"

यह कह कर उसने रुक्मिणी को अपने पास से ढकेल दिया और आप भागकर अपने साथियों के खेमे में आया। लकड़ियाँ पड़ी हुई थीं, चिता बनाई और उसी समय उसमें बैठकर जलजाना चाहा। साथियों ने पकड़ लिया। महल में कोलाहल मच गया। सूरसुन्दर

भी दौड़ा हुआ आया, "राजकुमार ! मैं सब सुन चुका हूँ। होने वाली बात होकर रहती हैं। तुम स्त्री न बनो और स्त्री की तरह जान न दो।"

उसने कहा, "अब मेरा जीना कठिन है। मैंने कमल को झील से निकाल कर आग में झुलसा दिया। यह महा पाप है ! यह मुझे कभी जीने न देगा। मैं कुढ़ कुढ़ कर मरूँगा।"

रुक्मिणी भी महा दुखी हुई। महल की स्त्रियों ने उसको बहुत ही धिक्कारा। वह भी रोती हुई आ पहुँची और अपने अपराधों के क्षमा करने के लिये प्रार्थना करने लगी। राजकुमार ने उसकी ओर आंख तक नहीं उठाई।

अन्त में लोगों ने उस भेष बदले हुये साधू से जो वहां ही था, कहा "महाराज ! राजकुमार के हृदय में आपकी श्रद्धा और भक्ति है। आप उसको आत्महत्या से बचाइये।"

साधू ने राजकुमार से कहा, "राजकुमार ! एक साधारण स्त्री के लिये इस प्रकार जान देना तुम्हारे लिये उचित नहीं है। तुमने बचन दिया था कि मुझको झील के किनारे पहुँचा दोगे। क्या भूल गये ? क्षत्री अपने प्रण को निबाहते हैं, अपनी बातों पर आरूढ़ रहते हैं। इसके अतिरिक्त यदि तुम मर जाओगे तो फिर ऋषिदत्ता से कैसे मिल सकोगे ! यदि जीवन है तो सम्भव है कि वह फिर भी कहीं से आकर तुमसे मिल रहे।"

राजकुमार—"महाराज ! मुझको धोखा न दो। झूँठी आशा न बँधाओ। साधू झूठ नहीं बोलते। मरे हुये से कैसे मिलना सम्भव है ?"

साधू—"मुझको बचन दो और मैं ऋषिदत्ता से तुमको मिला दूँगा। मैं विश्वास दिलाता हूं।"

राजकुमार—"फिर तो कहिये क्या आपने उसको कहीं अपनी आँखों से देखा है या किसी से सुना है ? क्या वह अब तक जीती है,

और आप उसका स्थान जानते हैं ? कहिये और जल्द कहिये। मेरे दुखों को दूर कीजिये।"

साधू—"मैं जानता हूं और भली भाँति जानता हूं कि वह अब तक जीती है। मैं अपने मित्र के लिये उसे यहाँ मँगा भी सकता हूं।"

राजकुमार—"यदि यह सम्भव है तो देर न कीजिये। आप जो कुछ कहेंगे मैं करूँगा। या तो यह प्राण इस शरीर में अभी निकल जाये या मेरी ऋषिदत्ता मुझको मिल जाये।"

साधू—"उसे बहुत दूर से लाना हैं। तुम शान्त और सावधान हो जाओ।"

राजकुमार—"मैं इससे पहिले तुमको अपना मन दे चुका था। अब आत्मा तक तुम पर न्योछावर करने को तैयार हूं।"

साधू—"आत्मा अपने पास रहने दो नहीं तो तुम ऋषिदत्ता से कैसे मिल सकोगे ! हाँ एक वर अवश्य दो। यदि तुम देने को तैयार हो तो इंकार न करो और मैं ऋषिदत्ता को तुमसे अवश्य मिला दूँगा।"

राजकुमार—"जी हां ! स्वीकार है।"

साधू—"तब मैं ऋषिदत्ता को लेने जाता हूं।"

साधू परदे के अन्दर चला गया, नहाया धोया, रंग बदला उस समय तक लोग राजकुमार को पकड़े हुये थे कि कहीं वह चिता में न कूद पड़े।

थोड़ी देर पीछे खेमे के परदे से एक महा सुन्दरी और अति सुकुमारी स्त्री धीरे धीरे मस्त हाथी की तरह रुक रुक कर पाँव जमाती हुई आई। बादल के परदों को फाड़ कर जैसे बरसात के दिनों में फुदकता हुआ चांद निकल आया करता है वैसे ही वह स्त्री भी इठलाती हुई आई। "यह कौन है ? किसकी लड़की है ? क्या इन्द्र ने किसी अप्सरा को पृथ्वी पर भेजा हैं ? या साक्षात सौन्दर्य ने रूप धारण कर रक्खा हैं।" राजकुमार ने देखा। अपने आपको

छुड़ा कर दौड़ता हुआ उसके पास आया, "मेरी प्यारी ऋषिदत्ता मेरी प्यारी रानी !" और उसके गले से चिपट गया। दिल का उबलता हुआ सोता आँखों की नहरों से गर्म पानी की धार बहाने लगा। यह पानी की बूंदें हैं या हृदय के अथाह सागर के अमूल्य मोती हैं, जो प्रेमी अपनी प्रिया पर प्रेम के साथ न्योछावर कर रहा है !

लोगों ने कहा, "ऋषिदत्ता और रुक्मिणी में आकाश और पाताल का भेद है। कहाँ पूर्णिमा का चमकता हुआ चाँद ! कहाँ बगुला ! कहाँ कुन्दन किया हुआ सोना ! और कहाँ पीतल !" सूरसुन्दर ने राजकुमार को हटा कर ऋषिदत्ता को गोद से चिमटा लिया, "तू मेरी धर्म की बेटी है। मैं तुझको देख कर बहुत ही प्रसन्न हूं। तूने दोनों कुल को पवित्र कर दिया। ऐसे रत्न खान और समुद्र में कहाँ मिलते हैं ! तेरे साथ बड़ा ही अन्याय किया गया। रुक्मिणी लज्जा से पसीने पसीने हो रही थी और टकटकी बाँध कर उसको देखती रही। घराती बराती दोनों दंग रह गये, "यह लक्ष्मी है या सरस्वती है ! दुर्गा है या और कोई देवी है ! नख सिख से ऐसा सुन्दर रूप ब्रह्मा ने आज तक नहीं बनाया ! देवी ! तू धन्य है !" उसी समय माली फूलों के टोकरे लाये और सब ने उस सुन्दर जोड़ी पर फूल बरसाये। जय जयकार की ध्वनि से भूमण्डल और नभ मण्डल गूँज उठा। राजमहल में नौबत बजने लगी। मन्दिरों में घन्टे और शंख बजने लगे। श्रद्धालु जैनी प्रजा तीर्थङ्करों की स्तुति के गीत गाने लगी।

सूरसुन्दर राज कुमार और ऋषि पुत्री को महल में लाया। रानियाँ लड़की से गले मिलीं। जो आनन्द सब को प्राप्त हुआ वह लिखने में नहीं आ सकता क्योंकि उस समय आनन्द की देवी साक्षात रूपधारी होकर वहाँ विराजमान होगई थी। रुक्मिणी अपनी सौतिया डाह को भूल गई। राजा सबके सामने उसे बहुत ही

डाँटने नगा परन्तु ऋषिदत्ता ने उसे हाथों के इशारे से मना किया। वह अपने पति (राजकुमार) से कहने लगी, "स्वामी ! प्राणनाथ ! तुमने साधू को वर देने के लिये बचन दिया था। याद है या नहीं ?"

राजकुमार—"हां प्राण प्यारी ! याद है।"

ऋषिदत्ता - "फिर मैं उसी साधू के मुख से बोलती हूं इस मेरी बहिन रुक्मिणी को अपने गले से लगा लो। राजा ने मुझको अपनी बेटी बनाया है। बड़ी बहिन अपनी छोटी बहिन के दुख को नहीं देख सकती। यदि तुम मुझको प्यार करते हो तो इसको भी प्यार करो। यदि मैं तुम्हारी हूं तो इसको भी अपनी स्त्री बनाओ। मेरे बाप ने मरते समय आपके सामने कहा था "पति की स्त्रियों से प्रेम करना' और मैं बहिन के साथ सच्चा प्रेम करूँगी। मैं तुमको दूसरी रानी देती हूं और जीवन पर्यन्त तुम दोनों की सेवा करती रहूंगी। मेरे हृदय में कोई अनुचित भाव भी न आयेगा।"

सब के सब दंग रह गये। ऋषिदत्ता स्वर्ग या किसी और ऊँचे महल की देवी है। रुक्मिणी के सर पर पानी का सैकड़ों घड़ा पड़ गया। वह रोती हुई ऋषिदत्ता के पाँव पर गिर पड़ी। उसने उठा कर गले से लगाया और अपने आँचल से उसके आँसू पोंछे। फिर राजकुमार के हाथ में उसका हाथ देकर दोनों के गले मिला दिये, मैं अपनी बहिन का ब्याह आज तुम्हारे साथ करती हूं। इसके आदर सत्कार में कोई भी कमी न आने पाये नहीं तो मुझे बहुत ही दुख होगा।"

राजा ने राग रंग का जलसा सजाया। कई दिन तक धूम धाम रही। सुलसा को गदहे पर बिठा कर सारे नगर में उसी प्रकार घुमाया गया। जब ऋषिदत्ता ने यह सुना राजा को समझा बुझाकर उसकी जान बचाई। हाँ वह उस राज से निकाल दी गई।

फिर राजकुमार दोनों स्त्रियों को लेकर अपने नगर को लौटा। राह में झील के किनारे पहुँच कर ऋषभदेव की पूजा करके अपने

नगर में आया। हेमरथ इन सब बातों को पहिले ही सुन चुका था। वह कई मील आगे राजकुमार को लेने आया। ऋषिदत्ता से अपने अपराधों के क्षमा करने के लिये प्रार्थना की। प्रेम के साथ सबको राज महल में लेगया।

इस घटना का राजा के चित्त पर बड़ा ही गहरा प्रभाव पड़ा। उसने राज काज राजकुमार को सौंप दिया। पुराने राजाओं के समान जंगल में जाकर तप करने लगा और भट्टाचार्य का शिष्य होगया। कनकरथ ने बड़ी उत्तमता और न्याय के साथ राज किया ऋषिदत्ता से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम सिंहरथ रक्खा गया। वह अपनी माँ के रंग रूप का था।

जब सिंहरथ सयाना हुआ एक दिन कनकरथ ऋषिदत्ता को साथ लिये हुए महल के दरीचे पर बैठा हुआ था। आकाश मण्डल में घने बादल की काली घटायें उमड़ आईं। हवा चली और दम के दम में सब को उड़ा ले गई। कनकरथ बोला; "प्यारी आकाश के बादल हमको उपदेश दे रहे हैं कि मनुष्य जीवन पानी का बुलबुला है। बादल आते हैं जाते हैं। पानी में बुलबुले उठते हैं और फूट जाते हैं। रात को तारे निकलते हैं और सूर्य के निकलते ही छुप जाते हैं। सब कुछ होगया। अब जीवन को भोग बिलास और खेल कूद में बिताना भूल है।" वह दोनों ऋषि के पास गये और उसकी पूजा की बाटिका को उसे भेंट चढ़ाया। फिर अपने समय पर उसी झील के किनारे जाकर तप करने लगे और अपने जीवन को सुफल कर लिया।

रति सुन्दरी

रति सुन्दरी साकेत पूर के राजा केसरी की लड़की थी। मां का नाम कमल सुन्दरी था। वह पढ़ी लिखी धर्मात्मा और पतिव्रता थी इसलिये उसने अपनी लड़की को भी उत्तम रीति से शिक्षा दी।

यह लोग जैनी थे क्योंकि उस समय जैन धर्म का प्रचार धूम-धाम के साथ था। कहने के लिये कोई चाहे कुछ कहे परन्तु जैनियों का शुद्ध धार्मिक जीवन औरों के लिये सदैव से प्रभावशाली और शिक्षा-प्रद रहा है। जैनी कहते थोड़ा थे परन्तु करते बहुत थे। यह लोग अपने जीवन को धर्म और सचाई के साँचे में ढाल कर सुन्दर बनाते थे। यही कारण है कि देखते देखते वह थोड़े ही दिनों में सारे देश का राजधर्म बन गया। बौद्धों की तरह इनके यहाँ भी पढ़ने लिखने का सिलसिला बराबर चला आता है। लड़का हो या लड़की दोनों को पढ़ना लिखना सिखाया जाता था जिसमें वे अपने धर्म को जानें और समझें। आजकल के जैनियों की दशा पर न जाओ। इस समय उनकी अवस्था शोचनीय है। जब वह उन्नति के शिखर पर थे उन के सद्भाव और सद्गुण सराहने योग्य थे। यह अपने धर्म का पालन बहुत ही उत्तमता के साथ करते थे। पुरुषों और लड़कों को जैनी भिक्षु और लड़कियों को जैनी भिक्षुनियां शिक्षा और उपदेश देती थीं। राजकुमारी रति सुन्दरी को भी एक जैनी भिक्षुनी ने पढ़ाया था। वह कर्म धर्म की बातों को भली भाँति समझती थी। वह बड़ी ही विवेकी और बुद्धिमान थी। समय के अनुसार काम करना भी वह भली भांति जानती थी।

जब रतिसुन्दरी युवा अवस्था को प्राप्त हुई माता पिता ने उसका विवाह नन्दन नगर के राजा चन्द्र के साथ कर दिया। वह अपने पति के घर गई। रतिसुन्दरी बड़ी ही रूपवती थी। राजा चन्द्र उस

को देखकर मोहित होगया। रात दिन उसके साथ रहता और किसी काम काज में जी नहीं लगता था। रतिसुन्दरी ने यह दशा देखी। उसने धीरे२ जैनशास्त्रों को सुना सुनाकर पति की काया पलट दी। उसमें वैराग और धर्म भाव आगया। फिर भी दोनों में गहरा प्रेम था और एक दूसरे को सच्चे हृदय से प्यार करते थे।

चन्द्र और रतिसुन्दरी सुख सम्पन्न जीवन व्यतीत करते थे। संसार में काल का चक्र चलता ही रहता है। यहाँ एक दशा नहीं रहने पाती। दिन के पीछे रात, और सुख के पीछे दुख आता ही रहता है। इनके जीवन में भी ऐसा समय आगया जिसका स्वप्न में भी ध्यान नहीं था।

कुरु देश का राजा महेन्द्र सिंह बड़ा ही पराक्रमी और तेजस्वी था। साथ ही विषय भोग में भी लम्पट रहा करता था। इसके दरबार में एक मनुष्य जयचन्द्र नाम का था जो अपने स्वार्थ और लाभ के लिये उसको भोग विलास की बातों में फँसाये रखता था। एक दिन उसने महेन्द्रसिंह से कहा कि "इस समय भारत वर्ष में राजा चन्द्र की रानी रति सुन्दरी जैसी रूपवती कोई स्त्री संसार में नहीं है।"

रतिसुन्दरी की सुन्दरता का हाल सुनकर महेन्द्रसिंह के मन में नाना प्रकार की बुरी बुरी भावनायें उत्पन्न हुईं। जयचन्द्र उसे नित्य भड़काता रहा। अन्त में राजा ने पतित होकर निर्लज्जता के साथ राजा चन्द्र के पास पत्र भेजा कि अपनी रानी रतिसुन्दरी को मेरे राज महल में भेज दो नहीं तो तुम्हारी कुशल नहीं है। महेन्द्र सिंह के दूत ने अपने राजा का सँदेशा अभिमान के साथ दरबार में सुनाया। फिर क्या था! चन्द्र के साथियों ने उसकी बड़ी ही दुर्गति की। वह किसी प्रकार भागकर कुरु देश में आया और सारी बातें राजा को सुना दीं।

जिस समय महेन्द्रसिंह ने अपने दूत के अपमान का हाल सुन, इसी बहाने से वह नन्दन नगर पर चढ़ आया। बहुत बड़ी लड़ाई हुई। कई दिन तक लोहे से लोहा बजता रहा। चन्द्र के पास बहुत थोड़ी सी सेना थी। वह हार गया। जिस समय शत्रु दल चन्द्र को पकड़ कर पहाड़ की ओर ले गया और महेन्द्रसिंह का नगर पर पूरा अधिकार जम गया वह तड़पता हुआ रतिसुन्दरी के महल में आया। रतिसुन्दरी को देखते ही मोहित होगया और बलात्कार उसे अपने साथ महल में ले गया। उसको भय था कि नन्दन नगर की प्रजा उसके वश में न आयेगी। उसने नगर को छोड़ दिया और राजा चन्द्र फिर लौटकर राज काज करने लगा।

रतिसुन्दरी अब महेन्द्रसिंह के राज महल में आ गई। वह रात दिन चिन्ता में रहा करती थी। एक तो पति के वियोग और उसके दुःख से दुखी थी दूसरे अपने पतिव्रत धर्म के बचाने का ध्यान था। इसी सोच विचार में वह रात दिन दुखी रहने लगी।

कई दिन के पीछे महेन्द्रसिंह उसके महल में आया और उससे कहने लगा, "सुन्दरी ! तू जानती है कि चन्द्र से और मुझ से क्यों लड़ाई हुई ? दूत का अपमान एक बहाना था। मैं तेरे प्रेम में दुखी था। आज मेरा भाग्य उदय हुआ है कि तू मेरे महल में आई है। अब मैं तुझ से प्रार्थना करता हूं कि तू मेरी रानी बनना स्वीकार कर जिसमें हम दोनों का जीवन सुफल हो।"

रतिसुन्दरी ने काम वश राजा की बातें सुनी और मन ही मन अपनी सुन्दरता पर पछताने लगी—"मैं सुन्दरी न होती तो पति के वियोग का दुःख क्यों सहती ! और क्यों मेरे लिये लहू की नदी बहाई जाती ! क्या करूँ क्या न करूँ ! प्राण त्यागती हूं तो आत्म-घात का महा पाप होता है और यदि ऐसा नहीं करती तो पतिव्रत धर्म के भङ्ग होने का भय है। शरीर छोड़ना बहुत ही सहल है

परन्तु मेरी इच्छा है कि एक बार और पति का दर्शन करलूँ फिर मरने का दुख न होगा। महेन्द्रसिंह समझाने बुझाने से नहीं मानेगा। वह काम के नशे में चूर है। सम्भव है अधिक कहने सुनने पर दुष्टता कर बैठे। इसलिये यहाँ चाल से काम लेना ही उचित है।"

यह सोच कर रतिसुन्दरी ने मुस्करा कर कहा, "महाराज! आप की क्या बात है! आप बलवान हैं, श्रेष्ठ हैं, पराक्रमी हैं। मैं एक अबला स्त्री हूं और आप से कुछ दान माँगना चाहती हूं। यदि आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करें तो जो कुछ आप कहेंगे मैं सुनूँगी।" राजा ने कहा, "ऐसी क्या वस्तु है जो मैं नहीं दे सकता। तेरे ऊपर तन मन, राज पाट, धन द्रव्य, मान प्रतिष्ठा, कर्म धर्म सब कुछ न्यौछावर है। तेरी आज्ञा का पालन करना मेरा परम धर्म है।" रानी हँसकर बोली, "वास्तव में आप बड़े ही उदार चित्त हैं। मैं और कुछ नहीं मांगती। केवल यह चाहती हूं कि चार महीने के लिये मुझको ब्रह्मचर्य का तप करने का अवसर दिया जाये। चार महीने अधिक नहीं होते।"

राजा काम के वश में था। उसकी आँखों पर चरबी छाई हुई थी। चार महीने उसके लिये चार युग होगये परन्तु करता क्या! बचन हार चुका था और रतिसुन्दरी को अप्रसन्न भी नहीं करना चाहता था, बोला, "जैसी तेरी इच्छा।" यह कहकर महल से बाहर चला आया।

रतिसुन्दरी उसी दिन से वह अभ्यास करने लगी जिसे जैनशास्त्रों में "आंबल तप" कहते हैं। भूषण और वस्त्र अलग रख दिये। सादा कपड़ा पहिन लिया और कठिन तपस्या करने लगी।

अभी चार महीने नहीं बीते कि महेन्द्रसिंह उसके पास आया। देखता क्या है कि चन्द्र को ग्रहण लग गया। रतिसुन्दरी दुबली पतली होगई है। राजा ने पूछा, "यह क्या कर रही है?" वह बोली

"मैंने आँबल तप धारण कर रक्खा है। चार महीने तक बराबर तप करूँगी इस समय के अन्दर यदि तुम मेरे व्रत को भङ्ग करोगे तो याद रक्खो हम और तुम दोनों नर्क में पड़ेंगे ।" राजा ने कहा, "संसार सुख और आनन्द भोगने की जगह है। यह मार्ग तपस्वियों का है। मेरा तेरा नहीं है।" रति सुन्दरी बोली, सुनो राजा मनुष्य जन्म सदा नहीं मिलता। जो कुछ जप तप में बीते वही सुफल है। इस देह की सुन्दरता में क्या धरा है ! आज मरे कल दूसरा दिन। यह शरीर दुर्गन्ध का पात्र है। मल मूत्र के अतिरिक्त इसमें धरा क्या है ! इस पर मोहित होना मूर्खता है ।" उसने सितार उठाकर हाथ में ले लिया और मस्त होकर गाने लगी—

शब्द

करले निज उपकार, मानुष तन पाया।
नर शरीर दुर्लभ देवन को, मन में सोच विचार।
अबकी चूक होय पछतावा, यह अवसर नहिं बारम्बार।
भक्ति भाव राह ले गुरु शरनी, तज दे विषय विचार॥
रात दिवस रहै लम्पट जग में, भजै न सत करतार।
श्री गुरु चरन शरन बलिहारी, जा भव निधि के पार॥

राजा चुप चाप सुनता रहा परन्तु उस पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। काम ने उसको अन्धा बना दिया था। रति सुन्दरी ने देखा कि चार महीने बीतने पर यह जान न छोड़ेगा इसलिये कोई ऐसी चाल चलनी चाहिये कि इसके हाथों से छुटकारा मिले। वह बड़ी ही बुद्धिमान थी। शास्त्रों का यथार्थ अर्थ बड़ी उत्तमता से समझती थी। उसने सोचा कि मैंने तप कर लिया है, चित्त में एकाग्रता आ गई है, इस समय जिस विषय को विचारूँगी उसमें सफलता अवश्य प्राप्त होगी। जैनियों के ग्रन्थ में अलंकृत भाषा में "शासनदेवी" की कथा आई है। मूर्ख उसे कहानी और दन्त कथा समझते हैं परन्तु मनोनियम (Mentalism) के जानने वालों के लिये गुप्त

रीति से उसमें विचार की प्रबल शक्तियों के सम्बन्ध में ऐसी ऐसी विचित्र बातें मिलती हैं जिनके अनुष्ठान करने से मनुष्य जो चाहे वह कर सकता है और हो सकता है। विचार में महान शक्ति है। विचार ही का प्रभाव चारों ओर पड़ता है। एकाग्रता के साथ बिचार करते रहने से रूपवान कुरूप और कुरूप सुन्दर बन सकता है। यह लोग विद्या का खेल और छोटा सा काम है। वास्तव में मनुष्य का जीवन विचार से बना है। शरीर, नस, नाड़ी, आँख, नाक कान केवल मनुष्य के विचारों की धार के घने रूप हैं। मन में एक विचार उत्पन्न हुआ और वही मन पर व्याप गया। फिर धीरे धीरे वह अपना रङ्ग रूप दिखाने लगता है और अभ्यासी को जैसी इच्छा होती है वैसा ही वह बन जाता है। यही ध्यान योग, यही ध्यान मार्ग, यही चिन्तन शक्ति जैनियों की शासन देवी का शासन है। यह बहुत ही गूढ़ विषय है। इसे केवल ऊँची समझ वाले समझते हैं। सर्व साधारण इसे नहीं समझ सकते।

रति सुन्दरी—मन में यह विचार दृढ़ और घना करने लगी कि मैं कुरूप हूं, कुष्टी हूं, शरीर से दुर्गन्ध निकलती है। देह में फोड़े फुन्सी निकल आये हैं जिससे पीप और लहू बहा करता है और मनुष्य को देख कर घृणा होती है। अभ्यास करते करते उसका रूप बदल गया। विचार शक्ति ने अपना बल दिया। चौथे महीने के बीतते ही वह रानी जो अपनी सुन्दरता के लिये प्रसिद्ध थी अपना रूप रङ्ग खोकर कुरूप और कुष्ठी होगई।

चौथे महीने की अन्तिम रात्री का बीतना था कि प्रातःकाल ही महेन्द्रसिंह रतिसुन्दरी के कमरे में आया। कमरे में पाँव रखते ही दुर्गन्ध से उसकी नाक भर गई। रतिसुन्दरी के बिगड़े हुये शरीर को को देख कर घबरा गया। उसने अपने मन के भाव को बहुत दबाना चाहा परन्तु सारी पहलवानी भूल गया। सती के विचार का सामना बल से नहीं किया जा सकता। रतिसुन्दरी पृथ्वी पर बैठी हुई है।

शरीर से लुहू और पीप निकल रहा है। आँखें धँसी हुई, गाल चिपके हुये, और बाल बिखरे हुए हैं। राजा ने सोचा यह रति-सुन्दरी है या कोई और है ! कुछ देर तक उसको देखता रहा फिर पूछा, "क्या तू रतिसुन्दरी है ?" उसने कहा, "हाँ ! क्या इसमें भी सन्देह है ? मेरा रूप देख ! मेरी यह दशा तेरे कारण हुई है। तू पापी है। तेरे विचार बुरे हैं। तू मनुष्यता और धर्म से पतित होगया है। तू ने मेरा पतिव्रत धर्म भङ्ग करना चाहा। देख तेरे कारण इसका क्या रूप होगया। जिस मुख की आभा को देखकर पूर्णिमा का चाँद लज्जित होता था आज उसी पर सैकड़ों मक्खियां भिन भिना रही हैं ! क्या तू अब भी न मानेगा ? और फिर भी कामातुर बना रहेगा ?" राजा भय से काँपने लगा। उसके मन में वैराग उत्पन्न होगया। हाथ बाँध कर अपने अपराध के लिये क्षमा माँगने लगा और बोला, "मैं तुमको ऐसा नहीं समझता था। जा तेरा विचार अपने मन से दूर कर दिया। मेरी शक्ति से बाहर तुमको फिर सुन्दर बना सकूँ। शोक के साथ तुमको तेरे पति लौटा देता हूं। इस घटना को मैं अपने हृदय से कभी भुला । इसका प्रमाण यह है कि सबसे पहिला काम मेरा यह जैन धर्म को ग्रहण कर लूँगा जिसके प्रताप से पुरुष ऐसे रत्न पैदा होते हैं।"

ादर सत्कार के साथ नन्दन नगर चली आई। देखा और उसी के मुँह से सारा हाल सुना धारण करने का भी परिणाम देख लिया। पछताने लगा। रतिसुन्दरी ने कहा, "प्राण हीं, जिस व्रत के धारण करने से कुरूप हो और शासनदेवी की कृपा से फिर रूपवती और आपकी सेवा के योग्य बनूँगी। केवल झको फिर तप करने की आज्ञा दीजिये